Chapter-4

चतुर्थ अध्याय

काव्यकला - दर्शन

महाकवि निराला की काव्य-कला के अध्ययन की सैध्दान्तिक भूमिका.

१ - प्राक्कथन :: निराला-काव्य के दो प्रमुख पक्ष दर्शन और कला में से दर्शन पक्ष पर इसके पूर्व के अध्यायों में विचार करने के पश्चात् ' कला ' की दृष्टि से निराला-काव्य के अध्ययन तथा अनुशीलन का सूत्रपात प्रस्तुत अध्याय में अगले अध्यायों की भूमिका के रूप में किया जा रहा है. उक्त विवेचन के अंतर्गत ' काव्य-कला ' संबंधी सैध्दान्तिक विचार, तथा काव्य-कला की समीक्षा के मानदंडों की स्थापना करना मुख्य उद्देश्य है. इसीके संदर्भ में निराला जी की काव्यकला विधायक मान्यताओं का अनुशीलन भी किया जा सकता है.

प्रस्तुत अध्याय का अध्ययन क्रम निम्नलिखित रहेगा:-

(१) कला की व्याख्या (सृष्टा या कवि, माध्यम और प्रक्रिया, सहृदय और समीक्षक की दृष्टि से)

(२) कला के सृजन की प्रक्रिया

(३) कला का स्वरूप

(४) कला का प्रयोजन

(५) निरालाजी की काव्य-कला विषयक मान्यताएं

(६) उपसंहार

२- कला की व्याख्या ::

२-० प्राक्कथन :: काव्य-कला तथा उसकी विविध समस्याओं पर भारत तथा पश्चिम में, विशद एवं गहन चिंतन की पुष्ट परम्पराएं मिलती हैं। तथा उक्त विषय से संबंधित विभिन्न विचार-सम्प्रदाय भी मिलते हैं। भारत में काव्य-कला की अनेक समस्याओं का विचार प्रधान रूप से निम्नलिखित विचार सम्प्रदायों द्वारा हुआ है--

(१) अलंकार

(२) रीति

(३) वक्रोक्ति

(४) रस

(५) ध्वनि

(६) औचित्य

सामान्यत: भारतीय साहित्य में, उक्त पांच सम्प्रदायों को दृष्टि में रख कर ही काव्य-कला पर विचार किया जाता रहा है। उक्त पांचों सम्प्रदायों में निश्चय ही काव्य-कला का सांगोपांग तथा संपूर्ण विश्लेषण एवं विवेचन हुआ है, परंतु यह विवेचन, प्रमुख रूप से संस्कृत की तत्कालीन काव्य-रचनाओं को लक्ष्य मे रखकर किया गया है। हिन्दी में जो काव्यशास्त्र प्रचलित है, वह मूलत: संस्कृत के काव्यशास्त्र का ही अनुसरण करता है। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि हिन्दी का अपना स्वतन्त्र कोई काव्यशास्त्र नहीं है। आधुनिक काल में हिन्दी की समीक्षा-प्रणाली बहुत अंशों तक पश्चिम के काव्यशास्त्र से प्रभावित रही है।

आशय यह कि हिन्दी काव्य को दृष्टि में रखकर उसका स्वतन्त्र और सर्वांगपूर्ण काव्यशास्त्र विकसित नहीं हुआ है. अतः हिन्दीतर काव्यों पर आधारित काव्य शास्त्र के उक्त मानदण्डों और सिध्दान्तों के आधार पर हिन्दी काव्य की समीक्षा करना अपने आपमें एक विवादास्पद स्वतन्त्र समस्या है, जिस पर यहाँ विचार करना न आवश्यक है, और न अपेक्षित है. परंतु यह अवश्य विचारणीय है कि निरालाजी की काव्य-कला के अध्ययन के हेतु किन सिध्दान्तों या मानदण्डों का आधार लेना उपयुक्त होगा. इस दृष्टि से विचार करने पर यह कहा जा सकता है कि अन्य छायावादी कवियों के समान स्वयं निरालाजी ने काव्य-कला संबंधी जो स्वतन्त्र चिन्तन किया है, वही उनके काव्य के अनुशीलन का प्रमुख आधार बन सकता है, परंतु काव्य-कला संबंधी प्रसंगोपात् किया गया, निरालाजी का चिन्तन उतना पूर्ण नहीं है. अतः उसकी पूर्णता के हेतु पश्चिम के उन कतिपय प्रतीकवादी कवियों तथा समीक्षकों की विचारधारा की सहायता लेना उचित होगा जो निरालाजी की विचारधारा के समीप माने जा सकते है. यहाँ पर यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि छायावाद तथा प्रतीकवाद में बहुत अंशों मे समानता दृष्टिगोचर होती है. ?

वस्तुतः पश्चिम के स्वच्छंदतावाद (रोमांटिसीज्म) के मूल में फ्रांस की क्रांति, तथा उस क्रांति के प्रणेता रूसो के क्रांतिकारी विचार थे. रूसो ने रूढिवादी समाज - व्यवस्था और व्यवहार का घोर विरोध करते हुए मनुष्य की मुक्ति या उसके स्वतंत्र्य की घोषणा की. उसके अनुसार

मनुष्य जन्म से मुक्त है, और उसे मुक्त ही रहना चाहिए, वह बंधनों में नहीं रह सकता.[1] मनुष्य प्रकृत्या अच्छा या भला है, वह क्षमता ओं और संभावनाओं का भंडार है. परंतु समाज की रूढ़िवादिता तथा दमन-नीति के कारण वह अपने गुणों का विकास नहीं कर पाता. अतः उसने मानव-प्रगति के हेतु, इस प्रकार की समाजरचना में परिवर्तन करने का आह्वान किया.[2] स्वच्छंदतावादी कवियों ने उक्त विचारों को अपनी काव्य रचनाओं में अभिव्यक्त किया है.[3] कालांतर में यह स्वच्छंदतावाद साम्प्रदायिक बन गया और उसमें काव्य के साथ समाजिक एवं नैतिक तत्वों का भी मेल हो जाने के कारण वह जड या स्थिर बन गया. परंतु व्यक्ति तथा कलाकार के स्वातंत्र्य की चेतना के साथ काव्येतर तत्वों को हटाकर विशुध्द काव्य के सृजन का आंदोलन आगे चलकर फ्रांस में प्रतीकवादी कवियों एवं विचारकों ने किया. इस प्रकार स्वच्छंदवाद की सृजनात्मक चेतना का पुनर्विकास प्रतीकवाद में हुआ.[4]

पश्चिम के उक्त स्वच्छंदतावाद का परिचय छायावादी कवियों को प्रत्यक्षतः तथा परोक्षतः बंगाल साहित्य के द्वारा हुआ था. परंतु इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेखनीय है कि छायावाद युग में भी रूढ़िवादी

---

१ - James-scott R.A. - The making of Literature - P. 161-162

२ - Hulme T.E - CRITICISM - The foundation of Modern Literary Judgment, P. 258

३ - तुल, वही, पृ. २५८,२५९.

४ - Savage D.S. - The Personal Principle 1944. P. 67

समाजव्यवस्था तथा परंपरागत मूल्यों के परिवर्तन का प्रबल आंदोलन आरंभ हो गया था। व्यक्ति तथा कलाकार के स्वातंत्र्य की मांग इस युग में विशेष आग्रह के साथ की गयी। आशय यह कि पश्चिम का स्वच्छंदतावादी साहित्य तथा उसीके समानांतर छायावाद युगीन बाह्य परिवेश - दोनों छायावाद के मूल में विद्यमान थे। पाश्चिम के प्रतीकवाद का प्रभाव भी आगे चलकर बंगाल साहित्य में मिलता है। विशेषात: परवर्ती प्रतीकवादी कवि W. B. Yeats का प्रभाव रवीन्द्रनाथ जैसे बंगाल कवियों में देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त, बंगला - साहित्य में प्राप्त संगीत, रहस्यवाद, सांस्कृतिक मूल्यों की काव्य द्वारा अभिव्यक्ति आदि विशेषताएँ भी उस पर पड़े हुए प्रतीकवादी संस्कारों को प्रकट करती है।[१] वस्तुत: पश्चिम के प्रतीकवाद की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

१ - प्रतीकवाद में रहस्यवाद का योग प्रमुख रूप में मिलता है।[२]

२ - प्रतीकवाद में कला के प्रति संपूर्ण आस्था अथवा निष्ठा मिलती है।[३]

३ - प्रतीकवाद में काव्य के साथ संगीत का सुमेल करने की प्रवृत्ति विशेष रूप से मिलती है।[४]

---

१ - Bowra C.M. - The Heritage of Symbolism - 1943, Introduction P. 2,3,9,12

२ - Ibid- P. 6,7

३ - Ibid- P. 8,11

छायावादी कवियों ने भी उक्त विशेषताओं का कम या अधिक मात्रा में परिचय दिया है. यद्यपि सभी कवियों में नहीं, परंतु निरालाजी में उक्त विशेषताएँ समग्रता से अवश्य मिलती है. कहा जा सकता है कि निराला जी प्रधानत: प्रतीकवादी थे तथा गौणत: स्वच्छन्दतावादी, जब कि अन्य छायावदी कवि मूलत: स्वच्छंदतावादी थे तथा अपवादत: प्रतीकवादी.

१-२ छायावाद, प्रतीकवाद और निरालाजी ::

कारण यह कि प्रतीकवाद विशुध्द काव्य है, क्यों कि वह काव्य का ही दर्शन है. छायावाद में इसी प्रकार काव्य के अतिरिक्त काव्य - दर्शन का भी समावेश है. छायावाद के प्रारंभ में कला के भाव - पक्ष को लेकर ही काव्य रचना की की गई, परंतु कालान्तर में छायावादी कवियों ने कला और भाव दोनों का मिला दिया. अंत में निरालाजी ने भाव या आशय (Content) का निगिरण ही कर डाला और एकमात्र रूप (Form) की सृष्ठि की. अत: यहा छायावद, पश्चिम के प्रतीकवाद के समानान्तर हो गया. इसी प्रकार प्रतीकवाद की तरह छायावाद में भी संगीत आकर्षण का

प्रमुख केन्द्र रहा।इस दृष्टि से निरालाजी ने संगीत को अपने काव्य में विशेष रूप से स्थान ~~दिल~~ तथा उभार प्रदान किया।उक्त विवेचन के आधार पर यही कहा जा सकता है कि छायावादी कवियों में,पंतजी में स्वच्छन्दतावाद का निखार मिलता है,जब कि निरालाजी विशुद्ध काव्य के सृष्टा-प्रतीकवादी प्रमाणित होते हैं।

पश्चिम में विकसित नवीन मूल्य-दृष्टि द्वारा निरालाजी की काव्य-कला का अध्ययन करने के समर्थन में निम्नलिखित कारणों की ओर भी संकेत किया जा सकता है--

(१) जिस प्रकार पश्चिम में मेलार्मे (मेलार्मे, वालेरी),बादलेयर,तथा रिल्के से लेकर एज़रापाउंड अथवा एलियट ने प्राचीन से नवीन में संक्रमण करते हुए काव्य के नये मूल्य तथा रूप का निर्माण किया,~~उस~~ उसी प्रकार निरालाजी ने भी हिन्दी-साहित्य के संक्रमणशील छायावाद युग में काव्य-कला को नवीन परिवेश प्रदान किया।

(२) निरालाजी का कवि-व्यक्तित्व भी उक्त कवि-परंपरा के कवियों के समान था।वह इस रूप में कि उक्त कवियों के समान चिन्तनप्रिय निरालाजी ने काव्य और दर्शन का सहज समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया।साथ ही काव्य-कला पर स्वतन्त्र तथा मौलिक चिन्तन द्वारा उसकी विशिष्ट व्याख्या प्रस्तुत की।

(३) उक्त कवियों के समान निरालाजी भी अपनी काव्य-कला विषयक आस्थाओं एवं मान्यताओं के प्रति दृढ़तापूर्वक प्रामाणिक रहे।उन्होंने न कभी काव्य के प्रकृत रूप को छोड़कर अवसरवादी बनने का प्रयास किया,और न अपनी कला का कभी प्रचार किया।

(४) उक्त कवियों के समान निरालाजी भी मूलत: कवि थे,तथा काव्य-सृजन उनका मूल लक्ष्य था।उक्त कवियों से निरालाजी का कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष

संबंध चाहे न रहा हो, परंतु काव्य-कला संबंधी, निरालाजी द्वारा प्रकट किये गये विचारों में से प्राय: अनेक विचारों की समानता, उक्त कवियों या उनके विशिष्ट आलोचकों के विचारों से देखी जा सकती है।

उक्त विवेचन के संदर्भ में एक और स्पष्टता आवश्यक है। २४वें हिन्दी साहित्य-सम्मेलन में के साहित्य-परिषद के अपने अभिभाषण में आचार्य प्रवर पं० रामचन्द्र शुक्ल ने छायावादी काव्य को दृष्टि में रखकर कहा था - `इधर हमारी हिन्दी में काव्य-समीक्षा के प्रसंग में `कला` शब्द की बहुत अधिक उद्धरणी होने लगी है। मेरे देखने में तो हमारे काव्य-समीक्षा-क्षेत्र से जितनी जल्दी यह शब्द निकले, उतना ही अच्छा। इसका जड़ पकड़ना ठीक नहीं।.... मैं फिर जोर के साथ मानता हूं कि यदि काव्य के प्रकृत रूप की रक्षा इष्ट है तो उसका पीछा इस `कला` शब्द से जहां तक शीघ्र छुड़ाया जाय अच्छा है।` यदि निरालाजी के काव्य-साहित्य का ठीक मूल्यांकन करना है तो यह आवश्यक है कि उक्त एकांगी अथवा पूर्वाग्रही दृष्टिकोण के स्थान पर उनके समय में उन्होंने `कला` को जिस आग्रह के साथ स्वीकार किया था, उसी आग्रह के साथ आज भी स्वीकार करना चाहिए। साथ ही इस आग्रह को उस समय जिस नवीन दृष्टि ने पुष्ट किया था, उसी प्रकार आज भी `कला` की नवीन दृष्टि से उनके काव्य का अध्ययन एवं अनुशीलन करना उपयोगी होगा। आशय यह कि निरालाजी के काव्य के प्रकृत रूप की रक्षा और समीक्षा दोनों इष्ट है तो `कला` की पुन: प्रतिष्ठा करना आवश्यक है। अतएव निरालाजी की काव्यकला का गंभीर अध्ययन करते समय कवि का `कला` विषयक दृष्टिकोण तथा उसका कलादर्श जानना आवश्यक है। साथ ही उनके काव्य का कला के जिन मानदण्डों के आधार पर मूल्यांकन करना है, उसकी स्पष्टता भी आवश्यक है। इस प्रकार कवि विशेष की काव्य-कला का स्वयं कवि तथा `कला` की द्विमुखी दृष्टियों से गंभीर, सांगोपांग एवं संपूर्ण अध्ययन संभव हो सकेगा।

आशय यह कि प्रस्तुत अध्याय में, कला या काव्यकला के स्वरूप तथा उसके विशिष्ट पक्षों का अध्ययन तथा कला के मानदण्डों का निरूपण निरालाजी तथा पश्चिम के कतिपय उन प्रमुख कवियों तथा आलोचकों की विचारसरणी को लक्ष्य में रखकर किया जायेगा, जो जिनके नाम इस प्रकार है-- Paul Valery, T.S. Eliot, Isabel Hungerland, Cleanth Brooks, Mark Schorer, Wellek & Warren, आई. ए. रिचर्ड्स आदि।

२-२ कला की व्याख्या का स्वरूप :: कला या काव्यकला, संसार के विविध पदार्थों के समान ही एक पदार्थ या वस्तु है। इसकी सृष्टि से की प्रक्रिया तथा स्वरूप का अपना वैशिष्ट्य है तथा इसकी उपयोगिता भी विशिष्ट है। साथ ही यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि इस पदार्थ के अस्तित्व का स्वयं अपने आप में स्वतंत्र मूल्य है। अतः इस वस्तु (कला) के सृजन की प्रक्रिया के स्वरूप और उपयोग के विषय में विचार किया जा सकता है, आशय यह कि 'कला' विषयक चिन्तन के निम्नलिखित तीन पक्ष हो सकते हैं--

(१) कला के सृजन की प्रक्रिया का अध्ययन।

(२) कला का स्वरूपात्मक अध्ययन।

(३) कला के प्रयोजन का अध्ययन।

उक्त तीनों पक्षों को जिन संदर्भों के आधार पर परखा जा सकता है, वे निम्नलिखित हैं--

(१) सृष्टा या कवि,

(२) माध्यम और प्रक्रिया,

(३) समीक्षक और सहृदय।

३- कला के सृजन की प्रक्रिया ::

३-१ सृष्टा या कवि की दृष्टि से :: काव्य का अर्थ दो रूपों में देखा जा सकता है-

(१) एक विशिष्ट भाव अथवा भाव-स्थिति तथा (२) 'कला' अथवा वह उद्योग जिसका उद्देश्य भाव अथवा भाव-स्थिति की पुन: सृष्टि करना है।[१] इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि कवि मुख्यत: उक्त दो छोरों के बीच की श्रृंखला है। वस्तुत: काव्य-सर्जन करते समय वह एक छोर से दूसरे छोर तक संक्रमण करता रहता है। इस प्रकार वह भाव,को मूर्त करता हुआ काव्य के रूपे 'रूप' का निर्माण या सृजन[२] करता है। इस रूप की सृष्टि करना उसका 'साध्य' भी है और 'कार्य' भी।

आचार्यों या विद्वानों ने काव्य-सृजन की प्रक्रिया के अंतर्गत कवि के आशय या कवि की अनुभूति को लक्ष्य में रखकर यह बताने का प्रयास किया है कि,काव्य कवि के आंतरिक या अप्रत्यक्ष आशय अथवा अनुभूतियों की बाह्य या प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है। इस दृष्टि से कवि की अनुभूति के दो रूप हो सकते हैं,(१) वह सचेत अनुभूति जिसे कवि अपनी रचना में उतारना चाहता है;(२) सृजन की संपूर्ण अवधि के समय विद्यमान[३] सचेत (Conscious) या अचेत (Un-Conscious) अवस्था की कुल अनुभूति। परंतु उक्त अनुभूति या कवि का मूल आशय तो उसकी अंतिम उपलब्धि या प्राप्त नहीं होती। वस्तुत: कवि की अंतिम सिद्धि तो उसकी कृति ही मानी जायगी। काव्य-कृति ही वस्तुत: कवि का प्रमाण है। आशय यह कि यद्यपि कवि अपना आशय या अपनी अनुभूति सूचित कर सकता है, परंतु सहृदय के लिए इससे अधिक महत्वपूर्ण[४] वस्तु यह है कि 'स्व' से स्वतन्त्र रहकर कवि ने क्या निर्माण किया है। क्योंकि कवि का कार्य वस्तुत: आशय या अनुभूति की मात्र

१- Valery Paul- The Art of Poetry - P.196-197

२- Ibid- P.291

३- Ed: Stallman Robert Wooster - Critique & Essays in Criticism - P.216

४- Valery Paul - The Art of Poetry - P.158

बाह्य अभिव्यक्ति करना न होकर उसका पुनर्निर्माण करना है।[1]

उक्त संदर्भ विवेचन के संदर्भ में निरालाजी के विचारों को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है--

निरालाजी[2] के अनुसार कला से, कलाकार का अधिक महत्व है, वही कला का अधिकारी है। वह कला[3] का अधिकारी इसलिए है क्योंकि वह *original* है, *follower* नहीं। उक्त मौलिकता तथा आधिपत्य के कारण ही उन्होंने कला को `नई सृष्टि` के रूप में उसी प्रकार स्वीकार किया है,[4] जैसे (जिस प्रकार) वालेरी ने `निर्माण` और या `पुनर्निर्माण` के रूप में व्याख्या स्पष्ट किया है। निरालाजी ने तो `कला` और `सृष्टि` दोनों को पर्यायवाची बताते हुए सृष्टि को कला की असंख्यता का प्रमाण माना है।[5] कवि के लिए उक्त पुनर्निर्माण या कला के निर्माण का एकमात्र साधन भाषा ही होती है। परंतु उल्लेखनीय तथ्य यह है कि जो शब्द, कवि प्रथम साधन के रूप में स्वीकार करता है, वही काव्य-सृजन की प्रक्रिया के समय उसके लिए साध्य बन जाता है।[6] इसका कारण यह कि कवि द्वारा प्रयुक्त शब्द का स्वरूप या अर्थ, रूढ़िगत या शब्दकोष के अर्थ से भिन्न होता है। सामान्यत: शब्द की ध्वनि तथा उसके अर्थ का परस्पर कोई संबंध नहीं होता। अत: कवि का कार्य ही सहृदय को शब्द और मस्तिष्क के बीच घनिष्ठ संबंध की अनुभूति कराना है।[7]

१- *Valery Paul- The Art of Poetry- P.174*

२- निराला, प्रबंध प्रतिमा, पृष्ठ १५६

३- वही, पृष्ठ १८६

४- वही, पृष्ठ १८५

५- वही, पृष्ठ २०२

६- *Valery Paul - The Art of Poetry - P.55*

७- *Ibid- P.74*

इस दृष्टि से कवि-कर्म की कल्पना करते हुए वालेरी ने उपर्युक्त रूपक प्रस्तुत किया है--

I generally proceed like a surgeon who sterilizes his hands and prepares the area to be operated on.... equating the words and forms of speech with the hands and instruments of a surgeon.[1]

आशय यह कि कवि के लिए शब्द ही सर्वोपरि है, वही उसके अव्यक्त या अमूर्त जगत को मूर्त 'रूप' प्रदान करता है। अत: उसकी प्रमुख समस्या यही रहती है कि इस व्यावहारिक साधन द्वारा, मुख्यतया अव्यवहारिक कार्य (काव्य) को किस प्रकार आत्मसात किया जाय। क्योंकि उसका लक्ष्य एक ऐसे जगत का या वस्तु और संबंध की क्रमव्यवस्था अथवा पद्धति का निर्माण करना होता है, जो व्यवहारिक व्यवस्था से असम्बद्ध हो।[2] इस प्रकार कवि को भाषा द्वारा कार्य करने के लिए, भाषा पर कार्य करना पड़ता है।[3]

उक्त विवेचन के संदर्भ में सृजन प्रक्रिया की दृष्टि से कवि तथा संगीतज्ञ की तुलना करने से कवि-कर्म का रूप और भी अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। वस्तुत: जिस प्रकार संगीतज्ञ कोलाहल के जगत (*Universe of noise*) से ध्वनि के जगत (*Universe of Sound*) को ग्रहण करता है, उसी प्रकार कवि भी असंबद्ध शब्दों के समूह से संबद्ध, सार्थक विशुद्ध शब्द-संसार का निर्माण करता है।[4] इस प्रकार गद्य तथा पद्य के भेद द्वारा भी काव्य तथा कवि-कर्म को समझा जा सकता है। 'चलना'

१- Valery Paul - The Art of Poetry - P. 54

२- Ibid - P. 189

३- Ibid - P. 172

४- Ibid - P. 189-192

और 'नृत्य करना' इसमें जो भेद है, वही गद्य और पद्य में है।[1] जिस प्रकार चलते समय हमारा निश्चित उद्देश्य तथा लक्ष्य होता है गंतव्य स्थान तक पहुंचने तक ही हमारी चलने की क्रिया में, गति में, आशय तथा अनुभव में वैविध्य देखा जा सकता है। लक्ष्य पर पहुंचने के पश्चात् उन वस्तुओं का अथवा उस चलने की प्रक्रिया का महत्व नहीं रह जाता। नृत्य करते समय भी कार्य की एक विशिष्ट वैविध्यपूर्ण पद्धति रहती है, परंतु अंतर यह कि ये कार्य स्वयं अपने आपमें साध्य या लक्ष्य होते हैं। शरीर के अवयवों का संचालन चलने और नृत्य करने, दोनों स्थितियों में होता है परंतु प्रथम स्थिति में शरीर-संचालन का मूल उद्देश्य निश्चित अन्य लक्ष्य की प्राप्ति होता है, जब कि नृत्य में शरीर के वेही अवयव तथा संचलन क्रिया अपने आपमें स्वयं ही लक्ष्य बन जाते हैं। अतएव नृत्य में साधन ही साध्य बन जाते हैं। इस प्रकार गद्य में शब्द प्रयोग का कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष लक्ष्य होता है, परंतु काव्य में शब्द प्रयोग का लक्ष्य स्वयं शब्द ही होता है।[2] आशय यह कि कवि की सृजन-प्रक्रिया में भाषा या शब्द का सर्वोपरि महत्व है। अतः काव्य को रूप प्रदान करते समय वह भाषा का पर्याप्ति रूप से उपयोग करता है।[2] वह भाषा की अपनी ओर से अभिवृद्धि भी करता है। क्योंकि वह सदा उस उपयुक्त[3] शब्द की खोज में रहता है, जो एक ही समय अनेक कार्यों का संपादन कर सके, अतः इस हेतु वह स्वयं भी भाषा की क्षति को पूर्ण करने के लिए नवीन शब्दों का निर्माण करता है। भाषा को इस प्रकार समृद्ध करना ही उसका प्रमुख कर्तव्य है।[4]

१- पश्चिम में काव्य के लिए *Verse* का तथा काव्येतर साहित्य के लिए *Prose* शब्द का प्रयोग होता है। भारत में गद्य भी काव्य का ही अंग माना गया है। अतः प्रस्तुत विवेचन में 'गद्य' का उल्लेख पश्चिम की धारणा के अनुसार किया है।

२- Hungerland I. C. – Poetic Discourse – P. 43

३- Ibid. P. 44

४- Eliot T. S. – Introduction 'The Art of Poetry' – P. xvii

काव्य-सृजन में भाषा के महत्व की ओर निरालाजी ने भी विशेष आग्रह का परिचय दिया है।उनके अनुसार काव्य के पुष्ट चित्रों का निर्माण[1] करने के हेतु शक्ति-संयुक्त भाषा[2] का होना अत्यन्त आवश्यक है।क्योंकि अंततः भाषा भावानुगामिनी[3] है,अतः पुष्ट चित्रों के अनुकूल ही भाषा भी पुष्ट होनी चाहिए।उन्होंने यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि कवि में, एक ही अर्थ को अनेक वाक्यों में[4] तथा विविध शब्दों में प्रकट करने की शक्ति होनी चाहिए।क्योंकि इस शक्ति के अभाव में भाव-सौन्दर्य का निर्वाह करना अथवा अनुभूतियों का पुनर्निर्माण करना[5] अशक्य है।आशय यह कि शुद्ध भाव की तरह मार्जित भाषा होनी चाहिए,अतः[6] भाव-सौन्दर्य के साथ शब्द-सौन्दर्य पर ध्यान देना कवि के लिए आवश्यक है।

आशय यह कि काव्य-सृजन वही कर सकता है जिसे भाषा का संपूर्ण ज्ञान, तथा उस पर पूर्ण अधिकार है,तथा जो भाषा की कमी को पूरा करने में समर्थ हो। संक्षेप में कवि 'शब्द-दृष्टा' होता है।

४- कला का स्वरूप ::

४-१ माध्यम और प्रक्रिया की दृष्टि से :सृष्टा या कवि की दृष्टि से 'काव्यकला' पर विचार करते समय यह स्पष्ट करने का

१- निराला,प्रबंध प्रतिमा,पृष्ठ १८५ : २- निराला,प्रबंध पद्म,पृष्ठ २६

३- निराला,संग्रह,पृष्ठ १२०

४- निराला,प्रबंध पद्म,पृष्ठ १३६

५- निराला,चयन,पृष्ठ ४५

६- निराला,प्रबंध पद्म,पृष्ठ ७४

प्रयास किया गया कि कवि की सृजनात्मकता का मूल आधार उसका माध्यम, भाषा है।अत: इस माध्यम तथा इसके विनियोग की प्रक्रिया को और अधिक स्पष्ट करना आवश्यक एवं उपयोगी सिद्ध होगा।

यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि यद्यपि काव्य द्वारा भाव, विचार या आशय का आकलन होता है,तथापि कवि भाव,विचार या आशय द्वारा काव्य नहीं बनाता,वह शब्दों द्वारा ही काव्य-सर्जना करता है।वस्तुत: ये शब्द काव्य के परमाणु कहे[१] जा सकते हैं क्योंकि शब्दों के ये परमाणु ही काव्य-सृष्टि के मूल आधार हैं।वह आभ्यंतर-भाषा या आभ्यंतर-बिंबों की अभिव्यक्ति बाह्य भाषा[२] द्वारा करता है।अत: कहा जा सकता है कि काव्य, भाषा में अंतर्निहित भाषा है।आशय यह कि काव्य मूलत:[४] भाषा पर आधारित कला है[३],अथवा दूसरे शब्दों में,काव्य,भाषा की कला है।

परंतु सर्वसाधारण जनभाषा तथा कवि द्वारा ~~प्रयुक्त-भाषा-में~~ कला के माध्यम के रूप में प्रयुक्त भाषा में अंतर है।सामान्य भाषा का महत्व या उसकी उपयोगिता,उसके द्वारा अर्थ-प्रेषण के बाद समाप्त हो जाती है।परंतु कवि द्वारा प्रयुक्त भाषा अर्थ-प्रेषण करने के बाद भी उसके प्रतिरूप कल्पना बिंब या विचार के रूप में भिन्न रूप में जीवित रहती है।आशय यह कि प्रेषण के बाद मूल भाषा विलीन हो जाती है।इसका कारण यह कि भाषा विधानात्मक होने के साथ ध्वन्यात्मक कहीं अधिक है।[५] प्रकृत्या: भाषा ध्वन्यात्मक या सांकेतिक होती है,[६] विधानात्मक नहीं।वैज्ञानिक या शास्त्रकार की भाषा ही विधानात्मक होती है क्योंकि उसका उद्देश्य भाषा के माध्यम से भाषा से अतिरिक्त या भाषा

१- मर्ढेकर, बा० सी०, सौंदर्य आणि साहित्य, पृष्ठ १११

२- Valery Paul - The Art of Poetry - P. 63-64

३- Ibid- P. 226, 270, 275

४- Ibid- P. 59, 64

५- Hungerland I.- Poetic Discourse - P.14

६- मर्ढेकर, बा० सी०, सौंदर्य आणि साहित्य, पृष्ठ, १०६

से स्वतंत्र तथ्यों का प्रेषण करना होता है।सामान्यत: आधुनिक भाषाविद् और दार्शनिक इस मान्यता के पक्ष में हैं।कवि इसी ध्वन्यात्मक या सांकेतिक शक्ति का उपयोग करता है।[1]

काव्य-सृजन के अंतर्गत भाषा के महत्व तथा उपयोगिता संबंधी निरालाजी ने विस्तारपूर्वक विचार किया है।इन विचारों का अनुशीलन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है--

शव्द का महत्व बताते हुए निरालाजी ने प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि शव्द ही वह माध्यम है जिसके द्वारा अर्थ का सही उद्घाटन होता है क्योंकि शव्द स्वयं प्रकाशवान है।[2] अत: भाषा के वृंत पर ही काव्य-कृति की कली खिलती है।[3]

निरालाजी के अनुसार हृदय में सार्थक भाव भरने के हेतु[4] रचना का आदि और अंत दोनों मनोहर शव्दों की श्रृंखला से बंधे होने चाहिए,[5] अथवा दूसरे शव्दों में सार्थक भाव के हेतु सार्थक शव्द-संगठन होना चाहिए,[6] अथवा शव्दों का तोल मालूम होना चाहिए।

काव्य-सृजन की प्रक्रिया में भाषा पर विचार करते हुए निरालाजी ने प्रथम बार काव्य के वर्णाधार का अध्ययन तथा अनुशीलन किया है।उक्त विवेचन के अंतर्गत उन्होंने पंतजी को कालिदास की परंपरा में श,ण,व,ल,वर्णों के स्कूल का कवि माना है तथा स्वयं को जयदेव की परंपरा में तथा ब्रजभाषा के

१- Hungerland I. - Poetic Discourse- P.18

२- निराला,प्रबंध प्रतिमा,पृष्ठ २३७

३- निराला,प्रबंध पद्म,पृष्ठ १७७

४- निराला,संग्रह,पृष्ठ १०६

५- निराला,प्रबंध पद्म,पृष्ठ ७६

६- निराला,चयन,पृष्ठ ४०

विकास की श्रृंखला में स,म,ब,ल स्कूल का कवि घोषित किया है। उनके अनुसार काव्य में स,म,ब,ल वर्णों का आधार ही खड़ीबोली के उच्चारण के अधिक अनुकूल है।[1]

आशय यह कि कवि की काव्य-वर्णना या काव्य-सृजना के भूषण शब्दों द्वारा ही कविता ऐश्वर्यशालिनि सिद्ध हो सकती है।[2] क्योंकि शब्दों द्वारा ही उक्ति में चमत्कार या सौंदर्य उत्पन्न होता है, और भावों की उच्चता के साथ उक्ति सौंदर्य ही कला की खूबसूरती उत्पन्न करता है।[3]

निरालाजी ने पौराणिक गाथाओं में से उर्वशी को चुनकर उसे कला और गीति की प्रतिमा माना है, क्योंकि वह शब्दों के साथ मिली हुई है, आशय यह कि शब्दों के साथ जो मिला हुआ है, वही काव्य है।[5]

माध्यम के रूप में भाषा का महत्व उक्त पंक्तियों में स्पष्ट किया गया है। यह माध्यम सामान्यतः काव्य के सभी रूपों में प्रयुक्त होता है परंतु इस माध्यम के प्रयोग की विधि सभी रूपों में समान रूप से नहीं हो सकती। प्रत्येक काव्य-रूप में भाषा का प्रयोग विशिष्ट ढंग से होता है। आशय यह कि काव्य-सृजन के समय भाषा के प्रयोग या विनियोग की विशिष्ट प्रविधि होती है। वस्तुतः काव्य-सृजन-प्रक्रिया के अंतर्गत यह विधि ही अनुभूति या आशय तथा 'कला'[6] अथवा 'रूप' या या फलीभूत आशय (achieved content) का भेदक तत्व है। अथवा दूसरे शब्दों

१- निराला, प्रबंध प्रतिमा, पृष्ठ २०४

२- वही, पृष्ठ २०२-२०५

३- वही, पृष्ठ ११७

४- वही, पृष्ठ ११७-११८ : निराला, चयन, पृष्ठ ५१

५- निराला, चाबुक, पृष्ठ ६६

६- Schorer Mark - 'The Hudson Review' I - Spring. 1948, P. 67

में इस प्रविधि में ही `आशय` और `कला` दोनों एक रूप में विलीन हो जाते हैं।

आशय यह कि काव्य-सृजन के समय कवि का मूल उद्देश्य `रूप` का निर्माण करना होता है।ध्वनि,लय,शब्दों का नियोजन,कल्पना,बिंब आदि द्वारा अनुभूति या आशय की कलात्मक परिणति `रूप` में होती है।उसका मूल आधार,माध्यम, तथा उसके प्रयोग की विशिष्ट प्रविधि ही मानी जा सकती है।काव्य-सृजन की प्रक्रिया में `रूप निर्माण` अथवा `रूप` के प्रति भी निरालाजी ने संकेत किया है।उनके अनुसार रचना[1] के रूपों के भीतर से ही कला अथवा सृजन की,सत्य में परिणति होती है।अर्थात् वे यह[2] मानते है कि रूप तथा भावनाओं का अरूप में सार्थक अवसान भी आवश्यक है।

आशय यह कि निरालाजी ने अधिक विस्तारपूर्वक तो[3] नहीं,परंतु संकेत या सूत्र रूप में,काव्य के `रूप` की चर्चा अनेक स्थानों पर की है।यद्यपि इस विषय पर उनके विचारों की विशिष्टता उक्त संदर्भों के आधार पर देखी जा सकती है।

उक्त विवेचन को सार रूप में इस प्रकार रखा जा सकता है।वस्तुतः हमारी और कवि की भाषा में अंतर नहीं होता परंतु कवि उसका उपयोग सामग्री के रूप में इस प्रकार करता है कि उसके द्वारा कोष-अर्थ छूट जाता है अथवा निमूल्य हो जाता है।अतःउसका अपेक्षित अर्थ ढूंढने के लिए किसी अन्य दिशा में खोज करना आवश्यक हो जाता है।इस दृष्टि से कवि द्वारा प्रयुक्त शब्द अभिनव अर्थ शक्ति प्राप्त करता है। तथा कवि की भावाभिव्यक्ति में समर्थ प्रमाणित होता है।कवि की काव्य-सृजन-प्रक्रिया का सूक्ष्म अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट होगा कि कवि की तीव्र अनुभूति शब्द के साथ जुड़ी हुई अनेक `तीतर-बीतर` अनुभूतियों को,ध्वनि के अथवा दृश्यों के वैविध्य को एक स्थान पर केन्द्रस्थ करती है।व्यवहारिक जीवन में जो अनुभूति होती है,वही व्यवहार का क्षण बीत जाने के बाद निरपेक्ष

१- निराला,प्रबंध प्रतिमा,पृष्ठ १५०

२- निराला,प्रबंध पद्म,पृष्ठ १७२

३- वही,पृष्ठ १७४ : निराला,चाबुक,पृष्ठ ५०-५१

या तटस्थ रूप में कवि द्वारा अनुभूत होती है।यही अनुभूति रसानुभूति का प्रथम या मूल बीज बनकर अपने पूरक,समर्पक,विरोधी,संघर्षात्मक,आदि अन्य विविध अनुभूतियों को अपनी ओर आकर्षित करती हुई है।अनुभूतियों के इस परिवेश में उस मूल-बीज का नवीन रूप प्रस्फुटित होता है।अत: सादृश्य,विरोध,संवाद और विवाद इत्यादि से समाविष्ट इस रूप का सहृदय को एक साथ आकलन या साक्षात्कार हो सके,इस कोटि की भाषा-शक्ति का विकास करना कवि के लिए अनिवार्य बन जाता है।आशय यह कि अनुभूति के संदर्भ में भाषा का उचित, समानुपाती तारतम्य स्थापित करना कवि कर्म का प्रमुख वैशिष्ट्य है।

५- कला का प्रयोजन ::

५-१ सहृदय और समीक्षक की दृष्टि से :--

सृष्टा या कवि द्वारा रचित कला-कृति का भोग सर्वसाधारण व्यक्ति से भिन्न,विशिष्ट व्यक्ति,ही कर सकता है,जिसे सहृदय कहा गया है।परंतु यह आवश्यक नहीं कि सहृदय में कला के भोग के साथ उसके तर्क संगत विश्लेषण या विवेचन की क्षमता भी हो।आशय यह कि सहृदय,समीक्षक नहीं भी हो सकता, जब कि समीक्षक अनिवार्य रूप से सहृदय भी होता है।परंतु कला का भोक्ता होने पर भी समीक्षक व्यक्तिगत रुचि के कारण कृति की श्रेष्ठता या विशिष्टता निर्धारित नहीं करता।वह बुद्धि की भूमिका पर स्थित रहकर कला के सत्य की, तर्क संगत सिद्धान्तों के आधार पर व्याख्या करता है।अतएव सहृदय समीक्षक की दृष्टि से कला संबंधी विचार करना उपयुक्त होगा।परंतु इसके पूर्व यह आवश्यक है कि समीक्षा के मूलाधार का संक्षेप में अनुशीलन कर लिया जाय।

(१) कार्य की समीक्षा करना मनुष्य का स्वभाव है।उद्दीष्ट सिद्ध हुआ या नहीं, यह जानने की इच्छा सामान्य रूप से मनुष्य में विद्यमान रहती है।

(२) साहित्य अंततोगत्वा जीवन को समझने की प्रवृत्ति है।परंतु जो स्वयं प्रवाह में रहता है वह प्रवाह का रूप नहीं समझ सकता, किनारे पर खड़ा हुआ व्यक्ति ही प्रवाह का रूप तादात्म्यपूर्वक तटस्थता के साथ समझ सकता है।

(३) सर्जक को जब प्राय: अपनी कृति में कमी नहीं दिखाई देती अथवा सहृदय या भावक जब उसकी खूबियां नहीं समझ पाता तब समीक्षक उनकी सहायता करता है।

उक्त स्पष्टता का सार यह कि समीक्षक कला और सहृदय के बीच माध्यम है, कलाकार और सहृदय के बीच नहीं।साथ ही अप्रत्यक्ष रूप से वह कलाकार का उपकारक तथा सहृदय का रुचि परिष्कारक होता है।आशय यह कि समीक्षक का मूल आकर्षण कला में ही रहता है और उसी की व्याख्या करता है।यदि कवि कला की सृष्टि करता है तो, कहा जा सकता है कि व्याख्याता के रूप में समीक्षक कला की पुन: सृष्टि करता है।[1] क्योंकि काव्य-सृजन के समय कवि जिस कल्पनात्मक प्रक्रिया का आधार लेता है, समीक्षक उसी प्रक्रिया द्वारा कृति की समीक्षा करता है।[2] इस दृष्टि से समीक्षा भी सृजन ही कही जा सकती है।अंतर यह कि सृजन अथवा कलाकृति 'ओटोटेलिक' (Autotelic) होती है, और समीक्षा अपने पारिभाषिक अर्थ में ही अपने से भिन्न किसी अन्य वस्तु से संबंधित होती है।अत: सृजन का आलोचना के साथ विलयन नहीं हो सकता,[3] परंतु आलोचना का सृजन के साथ विलयन हो सकता है।

१- Brooks Cleanth - Critiques and Essays in Criticism - Forword - P. XX

२- Ibid

३- Eliot T.S. - Essays in Modern Literary Criticism - 1952, P. 142

आशय यह कि समीक्षक काव्य को कवि की आत्मकथा के परिशिष्ट के रूप में अथवा काव्येतर परिवेश के संदर्भ में या कला-इतर रूप में नहीं, अपितु विशुद्ध सजीव काव्य-कृति के रूप में ग्रहण करता है।[1] वह अपना ध्यान काव्य के पाठ, शब्द योजना अथवा काव्य की भाषा तथा बिंबविधान पर केन्द्रित करता है। इस प्रकार वह काव्य के संपूर्ण संरचना का विश्लेषण करता हुआ संपूर्ण कृति को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है।[2] यह व्याख्या वह इस प्रकार करता है कि वह व्याख्या न रहकर स्वयं अपने आपमें एक सृष्टि या कृति बन जाती है। समीक्षक के उक्त कार्य में दो तत्वों का दर्शन होते हैं - 'निर्वैयक्तिक दक्षता (Impersonal Expertness) और प्राविधिक विश्लेषण (Technical-analysis).'[3]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि समीक्षक, कवि की सृजन प्रक्रिया के साथ स्पर्धा नहीं करता, न कृति को समझने के लिए वह कोई सनातन सिद्धान्त प्रस्तुत करता है, और न वह काव्य कृति को नितान्त बौद्धिक व्यापार में परिणत करता है। वह सामान्यतः कला के प्रति सचेत सावधानता का परिचय देता हुआ सृजन-क्रिया के साथ चलता है, तथा कला की पुनः सृष्टि करता है।

कला और समीक्षक के पारस्परिक संबंध के विषय में निरालाजी ने यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि समीक्षक कृति या कला का अनुगामी होता है।[4] अर्थात् उसका मूल संबंध कला से है। निरालाजी के अनुसार समीक्षा के समय समीक्षक की दृष्टि भाषा, भाव, रस, अलंकार आदि पर विशेष रूप से रहनी चाहिए।[5] अर्थात् काव्य 'रूप' पर ही समीक्षक का लक्ष्य होना चाहिए। यहां पर

१- Valery Paul - The Art of Poetry - P.94

२- Brooks Cleanth - Critiques & Essays in Criticism - Forword - P.XX

३- Kazin Alfred - From: 'Books' (New York Herald Tribune) May 30, 1948, P.5

४- निराला, चाबुक, पृष्ठ ४८

५- वही, पृष्ठ ४५, ४६

भी क्रम की या प्राथमिकता की दृष्टि से `भाषा` का स्थान प्रथम है। जहां तक `विचार` या `आशय` का प्रश्न है, निरालाजी को काव्योचित विचार ही मान्य हैं, `काव्येतर` विचार नहीं।[1] संक्षेप में निरालाजी की दृष्टि में समीक्षा या विवेचन के समय कला का प्रकार देखना आवश्यक है।[2] अर्थात् उसका कार्य यह मालूम करना है कि (१) कला किस रूप की है?

(२) कैसी गति लिए हुए है? और

(३) कहां पहुंची हुई है?[3]

उक्त तीनों मानदण्डों द्वारा निरालाजी ने अप्रत्यक्ष रूप से कला के `रूप` के विचार की ओर ही निर्देश किया है।

आशय यह कि समीक्षक मूलत: कृति या कला से संबंध रखता है, तथा इस रूप में वह काव्य की भाषा या शब्द-योजना पर विशेष लक्ष्य केन्द्रित करता हुआ, उसके `रूप` का उद्घाटन करता है।[4] अत: इस प्रकार वह कृति के साथ ही रहता है। निरालाजी द्वारा की गई विद्यापति, चंडीदास, तुलसीदास, पंत आदि तथा स्वयं अपने काव्य की समीक्षा में उक्त मान्यता का व्यवहारिक तथा प्रत्यक्ष रूप देखा जा सकता है।

६- निरालाजी की काव्य कला संबंध विषयक मान्यताएं :: निरालाजी ने काव्य कला के जिन गुणों का निर्देश किया है, वे इस ~~प्रक~~ प्रकार हैं -- अर्थ-गाम्भीर्य, भाव-माधुर्य, श्रुति-

१- निराला, चाबुक, पृष्ठ ४६

२- निराला, प्रबंध प्रतिमा, पृष्ठ २०२

३- वही, पृष्ठ २०२

४- निराला, चाबुक, पृष्ठ ४८

लालित्य, शब्दयोजना,[1] सूक्ष्मता,[2] औचित्य-निर्वाह,[3] विश्वात्मकता,[4] आदि। इसके साथ ही निरालाजी के अनुसार कला की सिद्धि इसमें है कि वह टिकनी चाहिए, यदि वह नहीं टिकती तो वह कला नहीं कही जा सकती।[5]

इसके अतिरिक्त निरालाजी ने जिस तत्व को कला के लिए विशेष महत्वपूर्ण माना है, वह है कला की पूर्णता।

निरालाजी के अनुसार कला का अर्थ केवल वर्ण, शब्द, छंद, अनुप्रास, रस, अलंकार,[6] या ध्वनि की सुन्दरता नहीं, बल्कि इससे संबद्ध सौंदर्य की पूर्ण सीमा ही कला है।[7] अथवा कला की पूर्णता इन तत्वों के समन्वय में है।[8] इनमें से किसी एक को लेकर की गई रचना खण्डकला होगी, पूर्ण कला नहीं। उक्त पूर्णता को स्पष्ट करने के लिए निरालाजी ने कहीं पूरे अंगों की सत्रह साल की सुन्दरी की उपमा प्रस्तुत किया[9] है। कहीं वृक्ष[10] के या पुष्प के,[11] अथवा कहीं विविध नदियों के सागर-संगम[12] के रूपक प्रस्तुत किये हैं। आशय यह कि निरालाजी उसी ~~को~~ कला को स्वीकार

१- निराला, संग्रह, पृष्ठ १७

२- निराला, प्रबंध पद्म, पृष्ठ १५३

३- निराला, प्रबंध प्रतिमा, पृष्ठ ८४

४- वही, पृष्ठ ८५

५- वही, पृष्ठ ४८

६- वही, पृष्ठ २०१

७- वही, पृष्ठ २१५

८- वही, पृष्ठ २१७

९- वही, पृष्ठ २०१

१०-वही, पृष्ठ ८४

११-वही, पृष्ठ २०१-२०२

१२-वही, पृष्ठ ८४

करते हैं,जो सर्वांगपूर्ण हो अथवा जिसकी अंतिम परिणति या समाप्ति पूर्णता में होती हो।इस दृष्टि से ही उन्होंने `कला` शब्द की व्याख्या करते हुए बताया है कि `कला` का अर्थ `अंश` या टुकड़ा होता है।चन्द्रमा सोलह कलाओं से पूर्ण होता है,अतः वह `सकल` कहा जाता है। कला भी इसी प्रकार पूर्ण होनी चाहिए।[1]

वैलेरी के विचारों में भी निरालाजी की ही प्रतिध्वनि मिलती है।उसने यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि उसकी यह कमजोरी है कि वह उस काव्य को कभी प्यार नहीं कर पाता जिसमें पूर्णता की अनुभूति न होती हो।[2] इस पूर्णता को स्पष्ट करने के लिए उसने भी पूर्ण कला-कृति के लिए पके हुए फल का रूपक प्रस्तुत किया है।[3]

७- उपसंहार ::

कला विषयक उपर्युक्त विवेचन को सार रूप में इस प्रकार रखा जा सकता है।

कला का कार्य न मूल्य-बोध का व्याकरण प्रदान करना है,और न विधि-निषेध की स्मृतियां रचना।फिर भी प्रकट रूप से नहीं,[4] परंतु प्रच्छन्न रूप से हमारे मूल्यों की रचना को पहला रूप कला ही देती है।वस्तुतः कला का सर्वस्व उसके अंतर्गत आने वाले वस्तुतत्व में नहीं बल्कि उसके `रूप` में है।अर्थात् जिसे कला का आशय कहते हैं,वह तत्व सनातन नहीं है ~~क्योंकि~~ परंतु कला का रूप या आकार ही सनातन है क्योंकि इस परिवर्तनशील जगत एवं जीवन में सदियों पूर्व की जीवन दृष्टि या मूल्य-बोध आज,तथा आज की दृष्टि या बोध सदियों बाद उतने ही स्वीकार्य,अटल और आनंदप्रद नहीं हो सकते।अतएव `रूप` की सनातन, कृतित्व तत्व ही

१- निरालाजी,प्रबंध प्रतिमा,पृष्ठ २०६

२- Valery Paul - The Art of Poetry - P. 288

३- Ibid - P. 289

४- जोशी,सुरेश,द्वारा की गई चर्चा के आधार पर, गुज.: 'क्षितिज' - जुलाई - १९६१ - पृ. ७०

प्रमाणित होती है क्योंकि वह सार्वदेशिक और सार्वकालिक आनंद प्रदान करने वाला है। सहृदय इस 'कला-रूप' का आस्वाद करता है क्योंकि यह 'रूप' ही आस्वाद्य है, वस्तु नहीं। यह एक सामान्य धारणा है कि सहृदय काव्य के आनंद का आस्वाद करता है। परंतु यह विधान भ्रामक है। क्योंकि आनंद स्वतः एक प्रकार का आस्वाद है, अतः उसका आस्वाद क्या हो सकता है? आनंद का रूप अवश्य हो सकता है, अतः वह रूप ही वस्तुतः आस्वाद्य है। क्योंकि वह आनंदायी है। आशय यह कि आनंद का रूप हो सकता है, और रूप का आनंद हो सकता है। अतः रूप और आनंद दोनों एक भी हैं, और काव्य के विशिष्ट, भेदक तत्व भी।

परंतु उक्त विवेचन का यह अर्थ नहीं कि कला का स्वरूप नितान्त वस्तु-विहीन होता है। वस्तु तो सर्वत्र, सर्वदा विद्यमान है परंतु उसमें से, उसके आधार पर कविता, कहानी, उपन्यास आदि कला के विविध स्वरूपों का निर्माण होता है। यद्यपि प्रत्येक आशय के लिए विकल्पात्मक रूप होते हैं परंतु हमारी प्रत्येक कल्पना का कोई निश्चित रूप अवश्य होता है। तब वस्तु का निर्माण नहीं होता अपितु कला का निर्माण होता है।[1]

कला के प्रयोजन की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि सृजन की लीला देखकर होने वाले विस्मय या चमत्कार या 'चेतोविस्तार' ही सृजन मात्र का प्रयोजन है। जिस आनंद या आस्वाद को प्राचीन कलाविदों[2] ने कला का धर्म बताया है, उसके द्वारा उक्त विवेचन को पुष्ट किया जा सकता है।

कलाकार या सहृदय या समीक्षक की दृष्टि से 'कला' का विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि कलाकार का सृजन ही उसके लिए कला का भोग या आस्वाद है, और सहृदय या समीक्षक का कला-भोग ही उसके लिए कला का

1- Langer Susanne K. - Philosophy in a new key. P.183
2- जोशी सुरेश - 'क्षितिज' - जुलाई - १९६१, पृ. ७१

`सृजन` है अर्थात् कला को `सृजन` रूप में ही समझा जा सकता है, कला के उत्पाद्य रूप में नहीं, क्योंकि इस दृष्टि से तो वह कला न रहकर `क्राफ्ट` बन जायगा। आशय यह कि सृजनात्मकता ही कला का मूलभूत लक्षण है अर्थात् कला तभी तक जीवित है, जब तक उसमें सृजनात्मकता है। `सौंदर्य-शास्त्र` या `स्वतंत्र कला-शास्त्र` में कला को इस रूप में समझना उचित है।

संक्षेप में आशय यह कि कवि अनुकरण नहीं करता, सृजन करता है। परंतु यह सृजन कवि शून्य में से, किसी उपादान के बिना नहीं करता। यह जगत और उसका अनुभव, उसका दर्शन, उसमें से उद्भूत संकुल भावानुभूति, यही कवि की कृति के उपादान हैं।[1] परंतु ये हैं, मात्र उपादान ही, इन उपादानों में से जिस कलामय स्वरूप का सृजन हो वही कला है। अर्थात् काव्य की कलात्मकता उसके रूप में निहित है।

आशय यह कि काव्य में रूप द्वारा आशय, या भाव का निगिरण होता है, परंतु इससे आशय का अस्तित्व लुप्त नहीं हो जाता, रूप द्वारा निगिर्ण हुआ वह वस्तुतत्व रूप के उदर में निहित रहता है।[2] अतः कहा जा सकता है कि निगिर्यमान वस्तु को धारण करने वाला सबब ही `कला` है। अतएव अगले अध्याय में उक्त काव्य-कला-दर्शन की पृष्ठभूमि में निरालाजी की काव्य-कला का अध्ययन एवं विवेचन किया जा रहा है।

१- तुल: जोशी सुरेश - दे. - 'क्षितिज' - जुलाई - १९६१ - पृ. ७१

२- वही -